'स्त्री' परम्पराओं की दो गज ज़मीन के नीचे (लेख)

दीप्ति कुमारी, रिसर्च स्कॉलर, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय

सारांश

प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार नारी को तपस्या, त्याग, तप, बलिदान, नम्रता, क्षमा, सेवा, पति सेवा, आदि गुणों से विभूषित गृहस्वामिनी की प्रतिमूर्ति माना गया है। मनु ने तो यहाँ तक लिखा है-

"पिता रक्षति कौमार्य भर्ता रक्षति यौवेने।
"रक्षांति स्थविरे पुत्र न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।"

अर्थात् बाल्यावस्था में पति और वृद्धावस्था में स्त्री की रक्षा पुत्र करते है। स्त्री को कभी इनसे पृथक् स्वतंत्र रहने का विधान नहीं है। ऐसा लिखकर मनु ने नारी शक्ति पर प्रश्नचिन्ह् लगाया है? मध्यकालीन सीमाओं में बँधीं नारी पर अशिक्षा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सतीप्रथा जैसे बंधन उत्तर व मध्य भारत में विदेशी आक्रमण के बाद स्त्री सुरक्षा की दृष्टि से लगाए गए थे। सामान्यतः प्राचीन मान्यताओं के अनुसार नारी प्रायः पुरुष की अधीन मानी जाती रही है। इसलिए ब्रिटिश राज्य के प्रभावस्वरूप भारतीय जीवन पद्धति में कुछ परिवर्तन प्रारंभ हुए। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी जैसे सुधारकों ने सामाजिक सुधार के साथ-साथ स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो -

'**अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी**,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

कहकर नारी सामर्थ्य व शक्ति को सीमित दायरे में संकुचित कर दिया है। यह 'अबला' विशेषण बार-बार नारियों को बहुत राहत नहीं दिलाता तो कोई खुशी का संचार भी नहीं करता। मूलतः 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में नारी ने स्वयं इस ओर रूचि प्रदर्शित की तथा महिला संगठनों ने स्वयं इस कार्य को अपने हाथों में लिया तभी स्त्रियों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसलिए बीसवीं सदी को महिला जागरण युग कहा जाता है।

इस शोध लेख में यही स्पष्ट किया गया है कि अति उन्नति के बावजूद भी नारी को घर, परिवार व समाज में वह स्थान नहीं मिल पाया है जिसकी वह अधिकारी है।

शब्द कूंची: 20वीं और 21वीं शताब्दी, नारी स्वातंत्र्य, नारी स्थिति, वर्तमान स्थिति।

प्रस्तावना

संस्कृति शब्द "सम्+कृ' से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बनता है। अर्थात् जिसका अर्थ हुआ 'भूषणभूत सम्यक् कृति' इसलिए भूषणयुक्त सम्यक् कृतियाँ, चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती है। 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' भी इसका अर्थ माना गया है। इस तहर जहाँ कहीं भी भूषण भूत सम्यक् चेष्टायें होगी, वही स्थल संस्कृति वाला क्षेत्र कहलाएगा, विश्व में ऐसा स्थल आज भी भारतवर्ष ही है।

ऋग्वेद में संस्कृति शब्द का अर्थ धर्मवर्तम है, यजुर्वेद में सत्कार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

डॉ. वासुदेव अग्रवाल के अनुसार - विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी संस्कृति है।

डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार - किसी देश का समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में अथवा सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि ही संस्कृति है।

वह केवल अतीत की विरासत नहीं, भविष्य की संभावना भी है। वह कई स्तरों पर जीने का अर्थ, मानवता की ऊर्ध्व गति और मनुष्य की सृजनक्षमता को ही व्यक्त नहीं करती वरन् चेतन-अचेतन रूप से उसके रूपातंरण की प्रक्रिया भी है जिसमें बनने-बनाने की प्रक्रिया निरन्तर लगी रहती है। इसीलिए एक ओर वह परम्परा में ढलती जाती है, दूसरी ओर भविष्य को भी ढालती जाती है।

ए.डब्ल्यू. मान के अनुसार - 'संस्कृति, ज्ञान व्यवहार तथा विश्वास को उन आदर्शों

पद्धतियों को एवं ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न उन साधनों को कहते हैं जो सामाजिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं।

वस्तुतः संस्कृति मानव जीवन के अन्य समस्त तानों की समष्टि का नाम है, जिनका धर्म और दर्शन से उदय होकर कला कौशल, समाज तथा व्यवहार में उसकी परिणति होती है।

हमारे रहन-सहन के पीछे जो हमारी अवस्था, मानसिक प्रवृत्ति है जिसका उद्देश्य हमारे अपने जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना ही संस्कृति है।

जैनेन्द्र कुमार का मत है कि - 'संस्कृति इस तरह मानव जाति की वह रचना है जो एक को दूसरे के मेल में लाकर उनमें सौहार्द्र की भावना पैदा करती है वह जोड़ती और मिलाती है उसका परिणाम व्यक्ति में आत्मोपमता की भावना का विकास और समाज का सर्वोदय है।

अनुभव और अभ्यास से मनुष्य की बुद्धि में अर्थात् सोचने विचारने में जैसे-जैसे विकास होता है वैसे-वैसे उसकी संस्कृति विकसित होती है।

मनुष्य में निरभिमानता, औदार्य एवं माधुर्य आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली संस्कृति ही है। संस्कृति का क्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं है अपितु हमारी बोलचाल की भाषा, उठने बैठने का ढंग, जीवन के उपकरण, खानपान, आसन, आवास, रीतिरिवाज आदि के परिष्कार करके उसमें लालित्य लाने का श्रेय संस्कृति को ही जाता है।

आज हम 21वीं सदी यानि सहस्त्राब्दी के अंतिम चरण पर खड़े है, या यों कहिए कि नई सहस्त्राब्दी में प्रवेश की तैयारी में है। परंतु गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि 20वीं सदी से लेकर 21वीं सदी के प्रारंभ तक नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व व अस्मिता की तलाश को लेकर जद्दोजहद कर रही है। उसकी स्थिति उस नाविक के समान है जो समुद्र तो बीच में नाव ले के गया परंतु लहरों के थपेड़े, उसे पार नहीं होने देते हैं तो इधर लहरों का वापिस बहाव उसे वापिस भी नहीं आने देता है। वह कशमकश में है। ठीक इसी प्रकार नारी ने पहले की बजाय और अधिक अपने आप को रूढ़ियों, परंपराओं, सामाजिक विसंगतियों के अंधकार रूपी गर्त में धकेल दिया है। इन सबके निर्वाह में वह न जाने कौन सी जमीन के नीचे खिसकती जा रही है। इसकी शुरूआत घर परिवार में कन्या जन्म से ही हो जाती है। जब यह ज्ञात होता है कि लड़के की बजाय कन्या ने जन्म लिया है तो चारों ओर मातम सा छा जाता है। शोक गीत गाए जाते हैं, सभी ओर से सांत्वना संदेश आने लगते हैं। नवयुग की निर्मात्री, घर परिवार की नींव नारी की यह दुर्दशा हमने स्वयं की है। शायद परंपराओं के ताने बाने को ओढ़ते-ओढ़ते माँ, सास, बहन व आसपास के माहौल से हमने वही सब वैसे का वैसा ही ग्रहण कर लिया है, बिना कुछ परिवर्तन किए हुए। सोचिए, एक घर में जहाँ जुड़वाँ बच्चों का जन्म होता है जिसमें से एक बालिका है और एक लड़का। परंपराओं के अनुसार लड़के का कुँआ पूजन संस्कार व सतिया पूजन तथा छठ पूजन इत्यादि संस्कार बड़ी धूमधाम से किया जाता है जबकि बालिका अन्दर माँ के साथ बिस्तर पर ही लेटी है परंतु भाई को उठाकर बाहर लाया जाता है पूजा अर्चना की जाती है। उस बालिका का क्या दोष? जो अपने भाई को साथ लाई है तब भी उसे कुँआ पूजन की रस्म से दूर रखा गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से बालिका जन्म पर अनुभव की गई हृदय की गहराईयों की प्रत्येक कामनाओं का सूक्ष्म से अति सूक्ष्म कंपन उस बच्चे की हृदय तंत्री को झंकृत कर देता है तो यहीं से उसका जीवन निराशा में बदल जाता है। अभी तो साहब यात्रा शुरू ही हुई है। थोड़ा बड़ा होते-होते दोनों के पालन-पोषण में परिवर्तन होने लगता है। दोनों की सेवा सुश्रुषा में अंतर आ जाता है। बहन बेचारी खाना खाते-खाते भी उठकर भाई को खाना परोस कर लाकर देती है। कॉलेज से आने पर पानी का गिलास व चाय भाई को मेज पर पहुँचाना बहन का परम कर्तव्य माना जाता है। यह सब नहीं करेगी तो मरेगी क्या, आखिरकार दादी माँ की फटकार सुनकर वह जी सकेगी क्या? सभी की आशाओं पर उसे तुषारापात तो करना नहीं है। 16-17 वर्ष की आयु तक आते-आते उसे कहा जाता है यह तेरा घर नहीं है। तुझे ससुराल जाना है। ससुराल जाने

पर पति का घर भी उसका नहीं, तो आखिर कौन सा घर उसका अपना है। जीवन की यात्रा 18 वर्ष तक माँ के घर फिर ससुराल, कहने में कोई नहीं अपना। जिस घर को वह तिनका-तिनका लाकर सजाती सँवारती है वहाँ पर छोटी सी तकरार होने पर एक झटके से उसे अलग कर दिया जाता है।

एक नई नवेली दुल्हन लाल जोड़ों में लिपटी जब अपने जीवन के अध्याय का नया सत्र प्रारम्भ करती है तो उसे फिर वही यंत्रणाएँ झेलनी पड़ती है जो कभी उसकी माँ, दादी ने झेली थी। ईश्वर की कृपा से यही वह भी कन्या को जन्म दे दे तो समझिए कि उसका जीवन अभिशाप बन जाता है। आज परिस्थितियाँ जरूर बदली है परंतु उतनी नहीं जितनी कि आवश्यक है। वह सभी की आवश्यकताओं का ख्याल रखते-रखते ही बूढ़ी हो जाती है।

पति व बेटे को जाते समय रूमाल, बैग, चश्मा, जूते, लंच, इत्यादि सभी वस्तुओं को ढूँढ कर ला देना उसका रोजमर्रा का अंग है। इन्हीं सब में तो वह शांति भी पाती है। अर्थात् जिस क्षण से भारतीय नारी धरती पर साँस लेती है उसकी भावी जिंदगी का स्वरूप निश्चित होने लगता है। नारी अपनी इस दशा के लिए स्वयं कम दोषी नहीं है।

पुरातन परम्पराओं के अनुसार विधवा स्त्री के लिए सफेद वस्त्रों को पहनने का प्रावधान है पत्नी की मृत्यु पर पति के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। नारी शमशान में नहीं जा सकती, चिता को अग्नि मात्र पुत्र ही दे सकता है। इन सभी परंपराओं की प्रतिक्रियात्मक स्वरूप समाजसुधारकों ने स्त्री अधिकारों की रक्षा के लिए विभिन्न कानून बनाए है जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, उन्मूलन, निषेधात्मक कार्य विधवा विवाह, भ्रूणहत्या कानून, तलाक अधिनियम, दहेज अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, गोद लेने का अधिनियम आदि। परिणामतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में नारी ने अपनी अस्मिता की रक्षा तो की है फिर भी वह मजबूर है परंपराओं की बेड़ियों को तोड़ने में। चाहकर भी वह ऐसा नहीं कर पाती है।

आज आर्थिक स्वावलंबी नारी ने घर की चारदीवारी से बाहर कदम रखा है तो वह दोहरा व्यक्तित्व जी रही है। घर की जिम्मेवारियों का बोझ तो कम हुआ ही नहीं कि बाहर की सौ जिम्मेवारियाँ भी उसी के कंधों पर आ पड़ी है। अब बाहर के बैंक जाने, बिल जमा करने, राशन लाने, गैस लाने, इत्यादि इत्यादि न जाने कितने ही कार्य उसके कंधों पर और वजन बढ़ा रहे है। सामाजिक मान्यताओं परम्पराओं, विश्वासों उसके व्यक्तित्व को बाँधे रखा, आर्थिक स्वातंत्र्य तथा कामकाजी रूप से उसका व्यक्तित्व आज भी खुलकर विकसित नहीं हो पाया है। वह जैसे कुँए से निकलकर खाई में आ पड़ी है, बाह्य परिवर्तन के कारण विभिन्न वस्तुओं के विज्ञापन, सिनेमा जगत, फैशन लोलुपता, पदोन्नतियाँ बल्कि चेतना ने जैसे उसे झकझोर दिया है। उसका जीवन पुनः विडम्बनाओं व परम्पराओं में तेज गति से डूबता जा रहा है। यह वही नारी शक्ति है तो एक दीप से सहस्रों दीपों को प्रज्जवलित कर सकती है।

जब हम नारी स्वतंत्रता की बात करते हैं तो प्रश्न उठता है कि स्वतंत्रता कैसी? किसने उसे बंदी बनाया है। उसे स्वयं अपनी शक्ति को पहचानना है। अधिक सजग होने की आवश्यकता है। बुद्धि से काम लेते हुए, परिवार व समाज की नीव को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए उसके ऊपर बहुत विशाल उत्तरदायित्व है अर्थात् परम्पराओं के घेरे जो उसने स्वयं निर्मित किए हैं। उनसे निकलने का रास्ता भी स्वयं सोचना है। तभी वर्जनाओं को उसे सर्जनाओं में परिवर्तित करना होगा। तभी होगी उसके स्वतंत्र व सजग व्यक्तित्व की पहचान।

86 प्रतिशत कन्याओं से प्राथमिक स्तर तक की स्कूल की पढ़ाई छुड़ा ली जाती है। 64 प्रतिशत माध्यमिक स्तर तक की स्कूल की पढ़ाई छुड़ा ली जाती है। 70 प्रतिशत महिलाएँ ही साक्षर हैं। 23 प्रतिशत ही रोजगार के क्षेत्रों से जुड़ी हैं।

हर दिन घर से ऑफिस / बाजार / सड़क / घर जाते हुए बलात्कार, हत्या, लूटपाट की घटना महिलाओं के सम्मान के साथ होना खिलवाड़ है। सरकार पर भी प्रश्नचिन्ह है। कन्या जन्म पर परिवार में मातम का होना, बूढ़ी माँ को दर-दर की ठोकरें खाने के लिए

छोड़ देना रोजमर्रा की आम घटनाएँ हैं। 'महिला दिवस' 8 मार्च को हम जरूर उनके प्रति आदर के भाव का पता नहीं दिखावा करते हैं या सचमुच आदर करते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। अब महिला दिवस आधुनिक त्यौहार बन गया है। अगले ही दिन से हम फिर पहले जैसे हो जाते हैं।

कुछ ही समय पहले 2011 में खबर छपी थी कि एक विमान यात्री ने विमान में चढ़ने से इसलिए मना कर दिया क्योंकि उसे महिला पायलट उड़ा रही थी। सोचना यह होगा क्या उसे विमान उड़ाने का प्रमाण पत्र अनुभव और क्षमता के आधार पर नहीं मिला था। वस्तुतः ड्राइविंग में लापरवाही बरतने का ठीकरा महिला के सिर पर ही फोड़ा जाता है। यहाँ तक कि सड़क पर कार चलाने वाली यदि महिला हो तो लोग एक अजनबी सी मुस्कान भरे अंदाज से व्यंग्य करते चले जाते हैं। कुछ लोग आपस में बैठकर ऐसी मसकरी भी करते है कि यदि भाई आपके आसपास कोई महिला कार चालक कार चला रही हो तो भैया सावधान हो जाना। क्या यही हमारी समाजिक मानसिकता है। जबकि सामान्यतः यह सच बात है कि जैसे महिला घर का प्रशासन बड़े सुयोग्य तरीके से संचालित करती है उसी प्रकार वह आज भी कर्मठ संचालक साबित होती है। हमारा लघु मन के रूप में विकसित समाज यह मानने के लिए तैयार ही नहीं है। यह योग्यता भी कार चलाने या विमान उड़ाने से कम नहीं है। यही कारण है कि आज महिला विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रें की जिम्मेदारियाँ बड़ी बखूबी निभा रही है।

मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार – ''स्त्री अपने समय की न्यायाधीश है और अपनी अधिवक्ता भी। उसे अपने फैसले खुद करने है। जरूरत है स्त्री को बेहतर स्त्री पैदा करने की, क्योंकि जनसंख्या के विस्फोट में पुरुषों का तादाद बेशुमार है। क्या पुरुष वर्चस्व में पुत्र कामना, सुहाग पूजा और पति परमेश्वर की हुकूमत से निजात पाने का संघर्ष करने के लिए तैयार है वह?''

यह स्थिति शहरों की है। गाँवों में तो जनता को यह पता ही नहीं है कि आठ मार्च क्या महिला दिवस है। उनके लिए सब दिन एक बराबर है। वही चूल्हा चौका, खेती बाड़ी का काम, घूंघट ओढ़े हुए पुरुषों से प्रताड़ना, सहमे हुए उफ तक न करना, यहाँ तक कि हिंसा भी हो तो कुछ न कहना। आर्थिक रूप से स्वतंत्रता का तो सवाल ही नहीं उठता। वहाँ तो किसी भी प्रकार की कोई आजादी महिला के लिए मायने ही नहीं रखती है। उसकी तो छोटी सी दुनिया है घर, परिवार, पति, बच्चे, खेत खलिहान, डगरों की सानी, पड़ोस, गांव के गलियारे आदि। दूर-दराज तक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनकी बच्चियों को कितना संघर्ष करना पड़ता है यह तो वे ही बखूबी समझती है। हमारे लिए वह हैरत का विषय हो सकता है पर उनके जीवन की यह जीवन प्रणाली है। आज भी बहुत से गाँवों तक टी-वी, बिजली, स्कूल, अस्पताल, आदि बुनियादी सुविधाएँ गाँव तक नहीं पहुँची है।

आज 8 मार्च, हिन्दी दिवस, वैलनटाईन डे, बालिका दिवस, वृद्ध दिवस की तरह एक सरकारी ऐलान बन गया है। स्त्री अपने घर होने वाले कुठाराघातों के लिए कहीं न कहीं स्वयं भी दोषी है क्योंकि अपनी बच्ची को कितनी माएँ यही शिक्षा देकर पालती है कि तू लड़की है, तेरा घर मायका नहीं है ससुराल है। पति ही तेरा परमेश्वर होगा। बच्चे, ससुराल ही तेरा परिवार होगा। इसी से तुझे मोक्ष मिलेगा। वह स्वयं भी यह सब आसानी से स्वीकार कर लेती है। कभी परिवार की दुहाई देकर, कभी पति/बच्चों की दुहाई देकर। उसी में स्वयं को रचा बसा कर आत्मसंतोष का अनुभव कर लेती है। सभी व्रत, त्यौहार, नारी के हिस्से ही आते हें। सभी की शुभाकांक्षाओं के लिए वह ही व्रत करके अपने आपको तपाती रहती है। वह पूर्वजन्मों व भाग्य का सहारा लेकर दंड रूपी फल भुगतने को तैयार रहती है। कभी सती, कभी लक्ष्मी, कभी कुलटा कहलाती रहती है।

निष्कर्ष

यहाँ मैं इतना कहना चाहूँगी कि घर, परिवार, पति, बच्चे सभी की सेवा करना कोई बुरी बात नहीं है किंतु प्रताड़ना सहकर नहीं, वह आत्सम्मान भी स्वयं का बनाए रखे तो नए समाज की नींव निर्मित होगी, नई बालिका का जन्म होगा। सभी एक-दूसरे के प्रति

समान आदर भाव रखे, आज भी नारी रोजगार पाकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद भी घर में अपना वह स्थान नहीं बना पाती है। 100 प्रतिशत ऐसा नहीं है, 90 प्रतिशत ऐसा ही है। 10 प्रतिशत में वह अपना स्थान अपने बलबूते पर हासिल कर लेती है फिर वह चाहे घर का क्षेत्र हो या बाहर का। आज सोच में बदलाव तो आया है परंतु अभी ओर बाकी है सोच बदलने की। कहाँ उसका शोषण कैसे होता है यह उसे पहचानना होगा। उसी तरह से अपने को सक्षम भी बनाए, आगे बढ़े तो देखिए मंजिल उसके सामने खुद व खुद आ जाएगी। फिर वह दिन दूर नहीं कि महिला दिवस धरे का धरा रह जाएगा। ठीक उसी तरह से यदि हम सब यह प्रण कर ले कि हिन्दी का ही प्रयोग करेंगे तो हिन्दी दिवस की जरूरत ही क्या है? इसी प्रकार सभी यह प्रण कर ले हम एक-दूसरे को समान अधिकार देते हुए मानवीय संवेदनाओं को समझते हुए बराबरी पूर्वक आगे बढ़ेंगे, बढ़ने देंगे। सहयोग देंगे तो समस्याएँ खुद ब खुद समाप्त हो जाएगी।

नारी जीती कहाँ है हर रोज मरती है, हजारों फंदे डाले हुए भी उसके प्राण नहीं निकलते हैं। यही उसकी सच्चाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय संस्कृति के स्वर, महादेवी वर्मा।
2. कृष्णा सोबती का लेख, जनसत्ता, रविवार 13 मार्च, 2011.
3. आधी दुनिया पूरी दुनिया, मैत्रेयी पुष्पा, जनसत्ता - साहित्य में दरोगाई।
4. विश्व हिन्दी पत्रिका।
5. प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री।
6. देवेन्द्र इस्सर - स्त्रीमुक्ति के प्रश्न।
7. अनामिका - स्वाधीनता का स्त्री पक्ष।
8. मैत्रेयी पुष्पा - खुली खिड़कियाँ।